IJAER/May-June 2016/Volume-5/Issue-3 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

रीतिकालीन हिन्दी साहित्य : प्रवृत्ति और युगीन संदर्भ

डॉ.लालचन्द कहार
व्याख्याता हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय कोटा राज.

सारांश

मध्ययुगीनता की दृष्टि से हिंदी साहित्य का रीतिकाल भी मध्ययुग में ही आता है। इस साहित्य की परंपरा कामशास्त्र, नाट्यशास्त्र और कृष्णभक्ति काव्य परंपरा में देखी–दिखाई जा सकती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार रीतिकाल में मौलिक शास्त्र चितंन नहीं हो पाया है। शास्त्र के नाम पर इस काल में संस्कृत काव्यशास्त्र की संक्षिप्त उद्धरणी प्रस्तुत हो गई थी। अर्थात् जिन्हें संस्कृत नहीं आती थी वे कवि और सहृदय रीतिकाव्य के इन ग्रंथों को पढ़कर काव्यशास्त्र के नियम जान–समझ सकते थे। ये मूलतः कवि थे, इसलिए इन कवियों ने शास्त्र के बहाने सुंदर काव्य रचनाएँ प्रस्तुत की । कविता की दृष्टि से यह काव्य परकीया प्रेम की मादक कल्पना का साहित्य है । इन्होंने नायक और नायिकाओं का भेद–उपभेद निश्चित करके उनके उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। 7 वर्ष से 35 वर्ष की अवस्था तक की स्त्रियों का इन्होंने नायिका के रूप में श्रेणी विभाजन किया है । इसमें शारीरिक संरचना, वय क्रम, स्वभाव, जाति, देश भेद के अनुसार नायिकाओं के असंख्य भेद कर दिए हैं। इन कवियों की स्त्री उपभोक्ता माल की तरह हमारे सामने आती है । यह सारा काव्य पुरुष दृष्टि से रचित है । इनके रचनाकार और श्रोता सब पुरुष हैं । स्त्री की मानवीय उपस्थिति का अभाव इस काल की कविता में देखा जा सकता है । इस काल के अधिकांश कवि राज दरबार में रहते थे, अतः दरबारी संस्कृति का इनकी रचनाओं पर गहरा असर दिखाई देता है । ये कवि राजा या रईस के दरबार से धन प्राप्त करते थे । इसी धन से उनकी आजीविका चलती थी । इन कवियों ने संस्कृत साहित्य और साहित्य शास्त्र का भी गंभीर अध्ययन कर रखा था, जिसे उन्होंने पुनर्प्रस्तुत किया ।

कुंजी शब्द : रीतिकाल, कवि, आचार्य, नायिका भेद, मध्यकाल, लक्षण ग्रंथ, काव्य शास्त्र, राज दरबार, मुगल साम्राज्य

प्रस्तावनाः

रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य में रीतिकाल को उत्तर – मध्यकाल के भीतर रखते हैं और इसका समय संवत् 1700 से 1900 तक लगभग 200 वर्षों का निश्चित करते हैं। इसे सन् में बदलने पर यह समय 1643 से 1843 तक ठहरता है। इस 1843 को बढ़ाकर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सन् 1857 तक किया जा सकता है। इस काल को शुक्ल जी कला की दृष्टि से श्प्रौढ़ता के अंतर्गत मानते हैं जब चिंतामणि त्रिपाठी ने लक्षण ग्रंथों की रचना की । इससे पूर्व कृपाराम ने रस निरूपण कर रखा था । रीतिकाल में शुक्लजी श्मुसलमानी राज्य की दृढ़ता को आवश्यक संदर्भ मानते हैं, जिसके कारण हिंदी कविता पर फारसी भाषा और साहित्य का असर बढ़ा। किंतु उन्होंने इसका विस्तृत विश्लेषण नहीं किया। हिंदी में यह काल रीति ग्रंथों के निर्माण का काल रहा है, हालाँकि भक्ति का कुछ प्रभाव इस काल में भी देखा जा सकता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** में रीतिकाल के अंतर्गत लगभग 103 कवियों का विधिवत परिचय दिया है। इनमें से 57 रीति ग्रंथकार कवि और 46 रीतिकाल के अन्य कवि शामिल किए गए । इनमें से शुक्ल जी ने 53 कवियों का संबंध राज दरबार या किसी न किसी रईस से बताया था। कुछ कवि स्वयं राजा थे। इनमें से किसी का भी मुगल दरबार से सीधा संबंध नहीं था । जिन कवियों का दरबार से कोई संबंध नहीं, उनमें से कुछ भक्त कवि थे। किसी के बारे में शायद शुक्ल जी को कोई जानकारी नहीं थी ।

काल का प्राथमिक विभाजन अतीत और सतत वर्तमान के बीच में हुआ । यह चेतना सबसे पहले विकसित हुई । उसके बाद व्यवस्थित रूप से जब काल का विभाजन हुआ, वह इस रूप में हुआ–अतीत, वर्तमान और भविष्य । यदि मध्यकाल की दृष्टि से इसे कहना चाहें तो इस रूप में भी कह सकते हैं– प्राचीनकाल, मध्यकाल और आधुनिककाल। दरअसल, मध्यकाल की धारणा आधुनिक काल के अस्तित्व में आने के बाद सामने आई। आधुनिक काल के बाद विचारकों की समझ में आया कि अतीत के दो भाग हैं – एक प्राचीनकाल और दूसरा मध्यकाल । वर्तमान काल आधुनिक काल है, जो इन पूर्ववर्ती दोनों कालों से भिन्न है ।

प्राचीन भारतीय दर्शन में मध्यकाल की कोई अवधारणा नहीं थी । यह अवधारणा पश्चिम से आई है, जिसका एक निश्चित अर्थ और संदर्भ है। भारतीय चिंतन में सतयुग, त्रेता युग, द्वापरयुग और कलियुग ही मान्य हैं। इन कालों को भारतीय चिंतक पतनोन्मुख कालों के रूप में देखते हैं। फिर यह चक्राकार धारणा है । कलियुग के समाप्त होने के बाद पुनः सतयुग का आगमन होगा। ऐसा विश्वास किया जाता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सन् 1965 में भारतीय पंचांगों की गणना के अनुसार बताया कि 'कलियुग के 5066 वर्ष बीत चुके हैं।' इसका प्रारंभ कब हुआ ? इस विषय पर दार्शनिकों में थोड़ा–बहुत मतभेद है, कुछ लोग 'महाभारत युद्ध के अंत में, कुछ श्रीकृष्ण के तिरोभाव के बाद और कुछ द्रौपदी के तिरोभाव के बाद कलियुग का आरंभश मानते हैं। इस दृष्टि से देखें तो मध्यकाल का समय इसी कलियुग के बीच का ही समय है और आधुनिक युग भी कलियुग ही है ।

जहाँ तक यूरोपीय इतिहास का प्रश्न है, यूरोपीय इतिहास में मध्यकाल का समय रोमन साम्राज्य के पतन (सन् 476 ई.) से कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों के अधिकार (सन् 1453 ई.) तक का काल है। इसके बाद इटली का पुनर्जागरण होता है और धीरे–धीरे यूरोप आधुनिक काल में प्रवेश कर जाता है ।

इस कालखंड की दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय इतिहास में यूरोप के समानांतर मध्यकाल मानने में दिक्कत हो सकती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भारतीय इतिहास में मध्ययुग के कालखंड पर विचार करते हुए लिखा है कि ष्आधुनिक विद्वान आठवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के स्वर्णयुग की अंतिम सीमा मानते हैं । हमने देखा है कि कलिकाल के जमकर बैठने का काल भी लगभग यही है । यहीं से भारतीय साहित्य का टीका– युग शुरू होता है। इसे ही आधुनिक पारिभाषिक शब्दावली में मध्ययुग या मध्यकाल कहा जाना चाहिए ।श फिर इस लंबे काल के भी दो हिस्से हैं । श्आठवीं शताब्दी का काल पूर्व – मध्य युग है और तेरहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक का काल उत्तर– मध्ययुग ।

भारतीय इतिहास में प्राचीन काल में हिंदू राजाओं का शासन था । इसके बाद मध्यकाल में मुस्लिम शासकों का साम्राज्य था और आधुनिक काल में अंग्रेजों का राज था । अतः कुछ लोग इसे हिंदू राज, मुस्लिम शासन और ईसाई शासन के रूप में भी देखते हैं इस तरह भारतीय इतिहास की व्याख्या भी यूरोपीय व्याख्या के अनुरूप होने लगी । यूरोप में प्राचीन युग यूनानी – रोमन साम्राज्य का था, बाद में मध्यकाल अंधकार युग कहलाया । इसके बाद पुनः इटली के पुनर्जागरण से आधुनिक युग का प्रारंभ हुआ जो अब उत्तर आधुनिक काल तक चला आया है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि से देखा जाए तो 'हिंदी साहित्य' भारतीय इतिहास के मध्ययुग से प्रारंभ होता है और वह भी लगभग उत्तर मध्ययुगीन काल से । जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदिकाल कहते हैं, उसे द्विवेदी जी नहीं मानते। हिंदी साहित्य के इतिहास का आदिकाल भी भारतीय इतिहास के मध्यकाल का ही हिस्सा है। 'चौदहवीं से अठारहवीं शताब्दी' के भीतर ही भक्तिकाल आता है। भक्तिकाल में सूरदास, कबीरदास, तुलसीदास और जायसी जैसे कवि हुए। जिनका हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है ।

डॉ. रामविलास शर्मा बारहवीं शताब्दी से भारत में सौदागरी पूँजीवाद का काल घोषित करते हैं। इस दृष्टि से यह आधुनिक काल के अंतर्गत आता है । काल की दृष्टि से रीतिकाल भी आधुनिक काल के अंतर्गत आता है। यहाँ द्विवेदी जी और शुक्ल जी से अलग डॉ. रामविलास शर्मा संपूर्ण हिंदी साहित्य को आधुनिक काल के भीतर ही गिनते हैं ।

मध्ययुग और मध्ययुगीनता में अंतर है । मध्ययुग कालवाचक है, जबकि मध्ययुगीनता एक मनोवृत्ति और विचार दृष्टि है। कुछ विचारकों का मत है कि मध्ययुग का अर्थ आधुनिक काल से पहले का और प्राचीन काल के बाद का काल है। अब इस काल में भी कुछ ऐसी बातें हैं या हो सकती हैं जो प्राचीन काल में थीं या आधुनिक काल में भी हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विस्तार से मध्यकालीनता बोध का स्वरूप स्पष्ट किया है। उनका मत है कि ष्मध्ययुगश या श्मध्यकालश शब्द भारतीय भाषाओं में नया ही है । आजकल इस शब्द का प्रयोग एक ऐसे काल के अर्थ में होने लगा है, जिसमें सामूहिक रूप से मनुष्य एक जबदी हुई स्तब्ध मनोवृत्ति का शिकार हो जाता है ।

उन्होंने विस्तार से प्राचीन दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन करके इस स्तब्ध और जबदी हुई मनोवृति का विश्लेषण किया है। प्राचीनकाल के विचारक मानते थे कि वे कुछ नया कह रहे हैं। जो बात पहले कोई नहीं जानता था, उसे हम आपको बता रहे हैं । इसी तरह आधुनिक चिंतकों ने भी सृष्टि के रहस्यों की नई व्याख्या की । पुनर्जागरण काल के विचारक कहते थे, अरस्तू बहुत महान थे। उन्होंने कई मौलिक बातें कही थीं, परंतु मात्र यह तर्क पर्याप्त नहीं है कि अरस्तू ने ऐसा कहा था। दरअसल सत्य अरस्तू के बाद भी है और उसे अलग से कहा जाना चाहिए । अर्थात् भारतीय हो या यूरोपीय मध्ययुग के चिंतक, विचारक और लेखक मानते थे कि सारा ज्ञान, सारी बातें अतीत में कही जा चुकी । अब हम कुछ भी नया कहने की स्थिति में नहीं हैं। हम सिर्फ प्राचीन ग्रंथों का अर्थ कर सकते हैं। उन्हें समझ और समझा सकते हैं। उनकी टीका कर सकते हैं या थोड़ा और अच्छी तरह से कहा जाए तो शास्त्रों में संगति बिठाने का काम कर सकते हैं।

भारतीय मध्यकाल में यह स्थापित हो गया था कि सारा ज्ञान वेदों में है । प्रत्येक तर्क का अंतिम प्रमाण वेद है । अब सभी व्यक्तियों के लिए वेद पढना आसान नहीं है । तब उनके लिए पाठ्य सामग्री क्या है? अतः प्राचीन काल में ही पाँचवें वेद की रचना कर डाली । महाभारत पाँचवाँ वेद है या भरत का नाट्यशास्त्र पाँचवाँ वेद है । उदाहरण के लिए भरत के रस सूत्र की व्याख्या परवर्ती चिंतकों ने की । भट्ट लोल्लट ने कहा कि स्थायी भाव ही रस है । यह स्थायी भाव उपचित होकर रस दशा को प्राप्त करता है । इसलिए रस सुख–दुःखात्मक है । शंकुक ने भी व्याख्या की और कहा कि रस अनुमिति होता है । वे भी रस की सुख–दुःखात्मक परंपरा में आते हैं। अभिनव गुप्त ने इसी रस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा कि रस स्थायी विलक्षण होता है । स्थायीभाव काव्य में होता है, जबकि रस सहृदय के चित्त में होता है । अतः रस आनंदात्मक अनुभूति है । रस के ये सभी व्याख्याकार यह नहीं कहते कि यह उनकी अपनी व्याख्या है। सब यही कहते हैं कि यह भरत का मत है और वे भरत के मत को समझा रहे हैं । अभिनवगुप्त ने एकदम मौलिक बातें कही हैं, तब भी वे अपने आपको इस मत का श्रेय नहीं देते। यदि अभिनवगुप्त विचारक आदि आधुनिक युग में हुए होते तो अपने सिद्धांत की मौलिकता को स्थापित करते ।

इस मानसिकता को महाकवि तुलसीदास से मिलाकर देखना चाहिए। तुलसीदास ने श्रामचरितमानसश की रचना की । यह उनकी मौलिक रचना है, लेकिन तुलसीदास कहते हैं कि नाना पुराण निगमागमों में जो बातें कही हुई हैं, वे उनकी ही रचना कर रहे हैं। यहाँ तक कि कबीरदास भी अपनी श्आँखों देखीश का ही वर्णन कर रहे हैं । वे भी नई बात नहीं कह रहे हैं जो बातें जगत में हैं, उन्हीं बातों को कह रहे हैं यह इन दोनों कवियों को मध्ययुगीनता बोध के भीतर ही रखती है। हालाँकि उन्होंने कई मौलिक बातें कही हैं।

यदि हम आधुनिकता और मध्ययुगीनता की तुलना करें तो कह सकते हैं कि श्सप्रश्न दृष्टिश आधुनिकता है। आधुनिकता सारे मान्य सिद्धांतों, आप्त वचनों, शास्त्रों और विचारों पर संदेह करते हुए उन्हें प्रश्नसूचक दृष्टि से देखती हैय जबकि मध्ययुगीनता आप्तवचनों पर विश्वास करती है। जो है, वह सही है। शास्त्रों में जो कहा गया है, वे ऋषि वचन सत्य हैं। उन पर अविश्वास करना पाप है। यह विश्वास उन्हें मध्ययुगीन बनाता है । मध्यकाल का कोई कवि जब प्रश्न करता है, तब हम उस कवि को आधुनिक कहने लगते हैं । कई बार कबीर हमें आधुनिक लगते हैं ।

प्राचीन काल से भारतीय दर्शन और चिंतन में इन दो बातों पर सहमति बनी हुई है । आपस में चाहे जितने मतभेद हों, परंतु इनमें दोनों विरोधी एकमत हैं । एक कर्मफल की धारणा और दूसरा पुनर्जन्म की धारणा । मनुष्य जो कर्म करता है, उसे उसका फल जरूर मिलता है । यदि आज नहीं मिला तो कल अवश्य मिलेगा। कल नहीं मिला तो भविष्य में मिलेगा । इस जन्म में नहीं मिला तो अगले किसी जन्म में मिलेगा। कई बार कष्टों का कुछ कारण समझ में नहीं आता, तब कहा जाता है कि यह पूर्वजन्म के कर्मों का फल है। कर्मफल और पुनर्जन्म की इन धारणाओं के कारण भारतीय समाज में विद्रोह नहीं होता । हम समाज के अन्याय, अत्याचार को सहन कर लेते हैं। कबीर और तुलसीदास की दार्शनिक–वैचारिक मान्यताओं के भेद के बावजूद इन दोनों मान्यताओं पर ये कवि एकमत हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार मध्यकालीन भारतीय मनीषा श्जगत के सामंजस्य विधान में संदेह नहीं करती । वह सर्वोपरि है ।

पुनर्जन्म की इस धारणा के साथ यह मान्यता भी मध्ययुग में स्वीकृत थी कि 84 लाख योनियों में से मानव श्रेष्ठ है । इन सब योनियों में भटकते–भटकते अंत में जीव नर देह को प्राप्त करता है। इस नर देह में ही वह पुण्य कर सकता है। भगवान की भक्ति कर सकता है और अपनी मुक्ति के उपाय कर सकता है । इसलिए श्चौरासी अंगुल का शरीर बहुत महत्वपूर्ण है। यह बात सगुण और निर्गुण दोनों कवि कहते हैं । नादान – नासमझ व्यक्ति को भक्तिकालीन कवि श्काम का कीड़ाश कहते हैं, जबकि रीतिकाल में वह श्रसिकश कहलाता है । भक्तिकाल के कवियों की परम कामना है, जन्म–मरण के इस बंधन से मुक्ति ।

सिर्फ चिंतन के स्तर पर ही मध्यकालीन जीवन स्तर निश्चित नहीं हुआ था, वरन् सामाजिक जीवन में भी वह व्यवस्थित हो चुका था । श्वर्णाश्रम व्यवस्था ठीक–ठीक कब प्रारंभ हो गई थी, इसकी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं है । इसी वर्ण–व्यवस्था के भीतर से जाति प्रथा विकसित होती गई। चार वर्ण हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । इसी तरह सौ वर्ष के जीवन की कल्पना करते हुए चार आश्रम भी नियत कर लिए गए थे – ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम । इस वर्णाश्रम और जाति प्रथा के दो सिद्धांत मान्य हो चुके थे जिनमें से एक यह है कि कोई व्यक्ति सिर्फ अपनी जाति में ही विवाह कर सकता था । इस नियम का उल्लंघन करने पर समाज में वह दंड का भागी होता था। कई बार दूसरी जाति में विवाह होने पर, संतान उत्पन्न हो जाने पर उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। कालांतर में उसकी नई जाति बन जाती थी । वर्णसंकर जातियों को सम्मान नहीं मिल पाता था । इस व्यवस्था में कालांतर में ढील सिर्फ इतनी दी गई कि विजातीय स्त्री–पुरुषों में रिश्ते तो हो सकते थे, परंतु विवाह नहीं सकता था। वर्ण और जाति संबंधी ये मान्यताएँ मध्यकाल में स्वीकृत थीं। दूसरे, वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार कोई व्यक्ति अपने पेशे में परिवर्तन नहीं कर सकता था। इसी के साथ यह भी तय हुआ कि कोई तथाकथित शूद्र वेदों का अध्ययन नहीं कर सकता था। वेद पूजनीय ग्रंथ हंभ और यदि किसी का मत अलग होता तो यह कहकर उसकी निंदा की जाती थी कि यह मान्यता वेद विरोधी है। इसी के साथ इस पूरे दौर मे ऐसे अनेक मत सामने आए जो खुले तौर पर वेदों का विरोध करते थे । वेद प्रमाण हैं, इस बात को वे नहीं मानते थे। वेद चार हैं– ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। इसी तरह छः वेदांग हैं । ये वेद तो नहीं हैं, किंतु वेद के अंग हैं। वेदों को समझने के लिए वेदांगों का अध्ययन किया जाना चाहिए। ये हैं– ध्वनि शास्त्र (शिक्षा) अनुष्ठान (कल्प), व्याकरण, व्युत्पत्ति (निरुक्त), छंद और खगोलशास्त्र (ज्योतिष) । इसके अलावा ब्राह्मण ग्रंथ और 18 पुराण– ये सब वैदिक परंपरा में माने जाते हैं। उत्तर वैदिक काल में भारत वर्ष में बौद्ध मत, नाथ संप्रदाय (जिनके नौ नाथ प्रसिद्ध हैं), सिद्ध (84 सिद्ध मान्य हैं), जैन धर्म, कापालिक, शाक्त, योग, सहज साधक, आदि आते हैं। ये सब परंपराएँ मध्यकाल में जीवित रही हैं। भक्तिकाल के कवि समर्थन करें या विरोध करें, इनके चिंतन की परिधि में यह बने रहते हैं । फिर सारे कवि, भक्त परमपिता परमेश्वर और स्वर्ग–नरक में विश्वास करते थे। देवता, मंदिर, उपासना, पूजा, तीर्थाटन ये इन सबके द्वारा अलौकिक दुनिया में अपने लिए स्थान सुरक्षित करने के साधन थे। ऐसे बहुत कम विचारक थे जो इन मान्यताओं को सप्रश्न दृष्टि से देखते थे। जो एक मत नहीं मानता था, वह दूसरा मत मानता था । सबकी परिधि का अंतिम बिंदु अलौकिक सत्ता में विश्वास था। भक्तों में यह विश्वास कभी डिगता नहीं था । मीरा को हालाँकि कभी कृष्ण मिले नहीं, परंतु कृष्ण के होने पर उनका विश्वास दृढ़ था।

हिंदी साहित्य के इतिहास के पूर्व मध्यकाल की इन मान्यताओं को उत्तरमध्यकाल में भी चुनौती नहीं दी गई थी। वे इन्हें मानकर चलते थे, परंतु उनके कर्म का बिंदु बदल गया था। रीतिकाल में पुरुषार्थों की श्रेणी में परिवर्तन हो गया था। अब श्कामश को प्रमुखता दी जाने लगी। इस काल के कवियों के लिए वेद या धार्मिक ग्रंथ महत्वपूर्ण नहीं रह गए थे । वे त्याज्य नहीं थे, वे आरदणीय थे, परंतु थोड़ा दूर थे। उनके मतलब का ग्रंथ था वात्स्यायन का कामसूत्र । इसलिए इस काल के कवियों ने शारीरिक आकर्षण पर, युवावस्था पर सबसे अधिक जोर दिया। उनका मानना था कि जब बुढ़ापा आएगा तब भगवद् भक्ति भी कर लेंगे। अभी रसराज शृंगार रस का भोग करते हैं । यही जीवन का काम्य आनंद है। यह सिर्फ हिंदी में ही नहीं था, वरन् इसकी परंपरा संस्कृत से हिंदी में आई थी। संस्कृत का श्अलंकृत काव्यश इन कवियों का आदर्श था । इसका विवेचन करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, ष्अलंकृत काव्यश श्रेणी की रचनाओं में कवि को अच्छी शिक्षा की जरूरत होती है। उसे अलंकारों का बहुत अच्छा ज्ञान होना चाहिए, कौन–सी बात ग्राम्य हो जाती है और कौन सी शिष्ट, इस बात की जानकारी होनी चाहिएय उसे रसों और भावों की पहचान होनी चाहिएय अनेक प्रकार की ऋतुओं में प्रेमियों के मानसिक उतार–चढ़ाव की ठीक–ठीक जानकारी होनी चाहिएय व्याकरणसम्मत, किंतु सरस भाषा के नाड़ी – स्पंदन का अनुभव होना चाहिएय प्रेम, मिलन, विरह आदि की विभिन्न स्थितियों को चमत्कारपूर्ण ढंग से कहने की क्षमता होनी चाहिएय प्रेमी और प्रेमिकाओं की विभिन्न अवस्थाओं का सूक्ष्म परिचय होना चाहिएय विशिष्ट अवसरों के वस्त्रों– आभूषणों आदि की सही–सही जानकारी होनी चाहिएय साथ ही उसके लिए अन्यान्य शास्त्रों की भी यथासंभव अधिक से अधिक जानकारी अपेक्षित है ।ष रीतिकाल के कवियों के भी देवता थे, परंतु वे कामदेव थे। वे पारंपरिक धार्मिक प्रणाली के विरोधी नहीं थे, परंतु उनकी रुचि बदल गई थी। इसलिए इनका साहित्य भी उस व्यापक मध्ययुगीनता के भीतर ही आता है । यह भाव परवर्ती संस्कृत काव्य से लेकर भक्तिकाल और रीतिकाल तक में अबाध गति से प्रवाहित होता रहा है ।

उद्देश्य

1. शास्त्रीयता के परिप्रेक्ष्य में भाषा–प्रयोग की कलात्मकता का ज्ञान।
2. भाषिक चमत्कार तथा ऊहात्मक प्रयोग की जानकारी।

रीतिकाल का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

रीतिकाल का प्रारंभ मुगल साम्राज्य के स्थायित्व के बाद हुआ । जिस काल में रीतिकाल का प्रारंभ माना जाता है, अर्थात् 1643 ई. में उस समय भारत में शाहजहाँ का व्यवस्थित शासन था। मुगल साम्राज्य का समय 1526 से 1857 ई. तक का रहा है। शाहजहाँ के बाद 1658 से 1707 ई. तक औरंगजेब का शासन रहा। इसके बाद राजनीतिक रूप से मुगल शासन कमजोर पड़ने लगा। जल्दी–जल्दी बादशाहों में परिवर्तन होने लगा। नई स्थानीय शक्तियों का उभार हुआ । मराठों और अकाली आंदोलन से मुगल शासन कमजोर होने लगा। अंत में बहादुरशाह जफर सिर्फ दिल्ली तक का शासक रह गया। 14 सितंबर, 1857 को अंग्रेजों ने बहादुरशाह जफर के शासन का अंत कर दिया। दिल्ली की केंद्रीय सरकार के कमजोर पड़ने पर कई शक्तिशाली सामंतों का उदय हुआ । उन्होंने दरबार की केंद्रीय परंपरा के अनुरूप अपने–अपने राज्य में भी दरबार सजाना शुरू किया। इन दरबारों में भी कवियों की उपस्थिति अनिवार्य होती थी ।

राज दरबार की यह परंपरा मुस्लिम शासन की देन नहीं थी । मुस्लिम शासन से पूर्व भी भारत में राजदरबार हुआ करते थे । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने राजशेखर के मत को उद्धृत किया है, जिसमें राजशेखर ने राजदरबार का आदर्श स्वरूप वर्णित किया है। ष राजशेखर कहते हैं कि राजा का कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह कवियों की सभाओं का आयोजन करे। इसके लिए एक सभा मंडप बनवाना चाहिए, जिसमें सोलह खंभे, चार द्वार और आठ अटारियाँ हों । राजा का क्रीड़ा–गृह इससे सटा हुआ होना चाहिए द्य इसके बीच में चार खंभों को छोड़कर हाथ–भर ऊँचा एक चबूतरा होगा और उसके ऊपर एक मणि– जड़ित वेदिका। इसी वेदिका पर राजा का आसन होगा। इसके उत्तर की ओर संस्कृत भाषा के कवि बैठेंगे । यदि एक ही आदमी कई भाषाओं में कविता करता हो तो जिस भाषा में वह अधिक प्रवीण हो, उसी भाषा का

कवि माना जाएगा। जो कई भाषाओं में बराबर प्रवीण है, वह उठ उठकर जहाँ चाहे बैठ सकता है। संस्कृत कवियों के पीछे वैदिक, दार्शनिक, पौराणिक, स्मृतिशास्त्री, वैद्य, ज्योतिषी आदि का स्थान रहेगा। पूर्व की ओर प्राकृत भाषा के कवि रहेंगे । पश्चिम की ओर अपभ्रंश भाषा के कवि और उनके पीछे चित्रकार, लेपकार, मणिकार, जोहरी, सुनार, बढ़ई, लोहार आदि का स्थान होना चाहिए । दक्षिण की ओर पैशाची भाषा के कवि और उनके पीछे वेश्या, वेश्या – लंपट, रस्सी पर नाचने वाले, नट, जादूगर, जंभक, पहलवान, सिपाही आदि का स्थान निर्दिष्ट रहेगा ।ष इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही राजदरबार में कवि उपस्थित रहते थे। प्राचीन भारतीय साहित्य और संस्कृति के जानकार विद्वानों का मत है कि राजसभा में सात अंग होने चाहिए। इनमें कवियों का होना भी आवश्यक है। ये अंग हैं – विद्वान, कवि, भाट, गायक, मसखरे, इतिहासज्ञ और पुराणज्ञ । कहते हैं कि राजा भोज की सभा में नौ महान विभूतियाँ विराजमान रहती थीं, जिनमें कालिदास का जिक्र भी आता है । इसी तर्ज पर अकबर के नौ रत्न भी प्रसिद्ध हैं– बीरबल, अबुल फजल, टोडरमल, तानसेन, मानसिंह, अब्दुल रहीम खानखाना, मुल्ला दो प्याजा, हकीम हमाम और दरबार का फारसी राज कवि फैजी । उत्तर मध्यकाल में चूँकि फारसी राजभाषा थी, इसलिए फारसी कवियों का महत्व अधिक था। हालाँकि छोटे–छोटे राज्यों में ब्रजभाषा के कवि भी उचित सम्मान पाते थे । तात्पर्य यह कि इस काल में कवियों का संबंध राजदरबार से बराबर बना रहा और भक्तिकाल के समाप्त होते–होते कुलीन वर्ग में इन दरबारी कवियों का महत्व बढ़ गया ।

लक्षण ग्रंथ – आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि रीतिकाल के कवियों के तीन मूल प्रेरणा स्रोत थे –

1. नाना प्रकार की प्रेम–क्रीड़ाओं को बतलाने वाले कामशास्त्र का
2. उक्ति– वैचित्र्य का विवेचन करने वाले अलंकार शास्त्र का
3. नायक–नायिका के विभिन्न भेदों और स्वभावों का विवेचन करने वाले रस शास्त्र का

इस काल के सभी प्रमुख कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना की, जिसमें काव्य के विविध अवयवों की शिक्षा देना प्रमुख उद्देश्य था । शुक्लजी के अनुसार इस कार्य में कोई मौलिक सिद्धांत निर्मित नहीं हुआ वरन् संस्कृत काव्यशास्त्र की संक्षिप्त श्उद्धरणी हिंदी में प्रस्तुत की गई। आचार्य शुक्ल के अनुसार सबसे पहले कृपाराम ने श्हिततरंगिणीश में नायिका भेद का विवेचन किया था । भक्त कवियों में नंददास ने श्रसमंजरीश में विभिन्न नायिकाओं के भेद व्यक्त किए थे। इनके बाद केशवदास ने श्कविप्रियाश और श्रसिक प्रियाश में काव्य के लक्षणों का विवेचन किया था । ये दोनों नए कवियों को शिक्षा देने के लिए लिखे गए थे। शुक्ल जी केशवदास की इन रचनाओं से रीतिकाल का प्रारंभ नहीं मानते। उनके अनुसार षहिंदी रीति ग्रंथों की अखंड परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से चली । अतः रीति काल का आरंभ उन्हीं से मानना चाहिए ।ष (हिंदी साहित्य का इतिहास) हिंदी के रीतिग्रंथों पर भानुदत्त की श्रसमंजरीश और जयदेव के श्चंद्रालोकश, का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था ।

रीतिकाव्य के आलोचकों का मत है कि हिंदी के लक्षण ग्रंथकर्ता शास्त्र चिंतक नहीं थे, वे मूलतः कवि थे। इसलिए जल्दी–जल्दी, आधे–अधूरे शास्त्र कथन के बाद वे कविता लिखना प्रारंभ कर देते थे। इसी में उनका मन रमता था । जहाँ तक इस दौर की कविता का संबंध है, शुक्ल जी मानते हैं कि इन कवियों की रचनाएँ संस्कृत कवियों से श्रेष्ठ हैं । द्विवेदी जी इस काव्य को भी संस्कृत काव्य के मुक्तक श्अलंकृत काव्यश की श्रेणी में ही रखते हैं। द्य

नायक–नायिका भेद

रीतिकाल के कवि की दृष्टि में पत्नी भी पत्नी नहीं होती, वह नायिका होती है और उसे वह श्स्वकीयाश कहता है । जो दूसरे की स्त्री है, वह परकीया है। रीतिकाल के कवियों की यह समझ अपने आप उत्पन्न नहीं हो गई थी। उनके ये विचार भी परंपरा से प्राप्त हैं । इसलिए संपूर्ण नायिका भेद का परिप्रेक्ष्य भी मध्ययुगीन ही है । इस परंपरा के तीन स्रोत हैं– एक काव्यशास्त्र, जिसका प्रारंभ भरत के श्नाट्यशास्त्रश से माना जा सकता है। दूसरा ग्रंथ कामशास्त्रीय ग्रंथ का श्कामसूत्रश और श्रति–रहस्यश है और तीसरा सबसे महत्वपूर्ण है, कृष्ण भक्तिकाव्य परंपरा । इस परंपरा के अनुसार नायक कृष्ण हैं और सारी गोपियाँ नायिकाएँ हैं। संपूर्ण रीतिकाव्य कृष्ण और राधा के सुमिरन का बहाना भी है। श्उज्ज्वल नीलमणिश

में 363 प्रकार की भिन्न–भिन्न स्वभाव और नामवाली गोपियों की चर्चा की गई है । और नायक तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं। जगदीश गुप्त के अनुसार देव ने नायिकाओं के 384 भेद किये हैं

संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार श्रृंगार रस का आलंबन विभाव नायक होता है । संस्कृत में भी और इसी तरह हिंदी में भी नायक की अपेक्षा नायिका भेद की तरफ कवियों का मन अधिक रमा है। नायिका से नायक का संबंध कैसा है ? इस आधार पर नायक का व्यक्तित्व निर्मित होता है । जो नायिका को प्रसन्न रखता है वह उत्तम नायक होता है, जो नायिका को न प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है, न अप्रसन्न करता है, वह मध्यम और जो नायिका की उपेक्षा करता है वह अधम नायक कहलाता है। कुछ आचार्यों ने पति, उपपति और वैशिक के रूप में भी नायकों को विभाजित किया है। किसी–किसी ने मानी, चतुर, अनभिज्ञ । और प्रेषित के रूप में भी नायकों का श्रेणी विभाजन किया है ।

जहाँ तक नायिकाओं के भेद का प्रश्न है, सबसे प्रचलित और सामान्य विभाजन है– स्वकीया, परकीया और सामान्या । श्कामसूत्रश के अनुसार स्वकीया नायिका का कोई महत्व नहीं है। वह घर के दैनिक कार्यों में लगी रहती है । शरीर की संरचना की दृष्टि से श्रति– रहस्यश के अनुसार नायिकाएँ चार प्रकार की होती हैं–

1. पद्मिनी
2. चित्रिणी
3. शंखिनी और
4. हस्तिनी

जायसी की पद्मावती पद्मिनी श्रेणी की नायिका है। उन्होंने उसी के नख शिख का वर्णन किया है। श्काव्यशास्त्रश में स्वकीया नायिका को वयःक्रम के अनुसार मुग्धा, मध्या और प्रगल्या के रूप में विभाजित किया है । यह विभाजन परकीया नायिकाओं में भी मान्य है । भानुदत्त ने मुग्धा के दो भेद किए हैं– अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना । कुछ आचार्यों ने उम्र के हिसाब से नायिकाओं का विभाजन इस प्रकार किया है–

1. देवी (सात वर्ष की अवस्था तक)
2. देव गंधर्वी (सात से चौदह वर्ष की उम्र तक)
3. गंधर्वी (चौदह से इक्कीस वर्ष की उम्र तक)
4. गंधर्व मानवी (इक्कीस से अट्ठाईस वर्ष की उम्र तक)
5. मानुषी (अट्ठाईस से पैंतीस वर्ष की उम्र तक)

इसमें उम्र के हिसाब से थोड़ा–बहुत मतभेद भी मिलता है । इस तरह रीतिकालीन आचार्यों की दृष्टि से सात से पैंतीस वर्ष की उम्र तक की स्त्रियों पर ही कविता लिखी जा सकती है। इसमें दूती, सखी और धाय उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आती हैं। कई कवियों ने विभिन्न जातियों की नायिकाओं का भी अलग से वर्गीकरण किया है । इसी तरह देश–प्रदेश की स्त्रियों की भी अलग श्रेणी बना दी गई है जैसे इन भिन्न–भिन्न जाति की स्त्रियों की प्रकृति कैसी होती है? इन्हें कैसे प्रेम–संबंधों के लिए सहमत किया जा सकता है। यह जानना बहुत जरूरी है। इस चरित्र चित्रण का अंतिम उद्देश्य काम का आनंद प्राप्त करना है । कुल मिलाकर रीतिकाव्य शारीरिक सुख की मादक कल्पना का साहित्य है । कवि तरह–तरह की नायिकाओं के साथ इस कल्पना को वाणी देते हैं, जो कल्पित है और यथार्थ भी । श्रोताओं की कामना रहती है कि वे अधिक से अधिक इस सुख का भोग करें। यह सुख आधुनिक दृष्टि से मानवीय नहीं है, वरन् जैविक है । नायिका भी एक जैविक इकाई है और इसी तरह नायक भी।

निष्कर्ष

रीतिकाल की काव्यभाषा अलंकृत और चामत्कारिक है। रीतिकाल के कवियों में कलात्मक सजगता अधिक है। वे शास्त्रीय–विधान से प्रभावित हैं। रीतिकवियों ने तत्सम तद्भव, देशज और विदेशी खास तौर से अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। रीतिकाल की मुख्य काव्य भाषा ब्रज भाषा है, गौण रूप से अवधी में भी काव्य रचनाएँ हुई हैं। सौन्दर्य चित्रण में परम्परित उपमानों के आधार पर नई उद्भावनाएँ की गयी हैं। कुछ कवि नए उपमानों, प्रतीकों का भी प्रयोग करते हैं। बिम्ब–विधान अलंकारों के माध्यम से किया गया है। रीतिमुक्त कवियों की भाषा में लोक शब्द अधिक हैं। भाषा की अर्थ–व्यंजना अभिधात्मक कम लाक्षणिक अधिक है। समान विषय–वस्तु को लेकर कवि अपनी–अपनी भाषा–शैली में प्रभावशाली अभिव्यक्ति करते हैं।

संदर्भ–ग्रंथ

1. केशव और उनकी रामचन्द्रिका– प्रो. देशराज भाटी, अशोक प्रकाशन, दिल्ली 1971
2. घनानन्द कवित्त– मनोहरलाल शर्मा– रीगल बुक डिपो–दिल्ली 1988
3. बिहारी रत्नाकर– सं. जगन्नाथ दास रत्नाकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. मध्यकालीन काव्यभाषा– रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. रीतिकाव्य : प्रकृति और स्वरूप, डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास– रामचन्द्र शुक्ल, श्यामा प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद
7. हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास– रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
8. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास– रामस्वरुप चतुर्वेदी, लोकभारती, इलाहाबाद
9. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1996
10. हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य– रामकिशोर शर्मा, श्यामा प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद

———————————————————